अभी संभावना है

मीडिया, अभिव्यक्ति के माध्यमों का मिला-जुला नाम है। रेडियो और टीवी के समाचार चैनलों को इसमें से कम कर दें तो समाचार केन्द्रित पत्र-पत्रिकायें ही मीडिया के नाम पर गिने जाते हैं। इंटरनेट केन्द्रित सोशल मीडिया को अभी भी नये मीडिया के रूप में ही गिना जाता है यानी एक अर्थ में वह अभी मीडिया की वृहतत्रयी में समायोजित हो रहा है। यही सब मिलकर इस समय के सूचना-विचार केन्द्रित समाज के लिए उत्तरदायी हैं या यूं कहें कि इनकी जानकारियाँ ही इस समय के सूचना समाज का आधार हैं। यह सब अब एक-दूसरे के इतने अधिक समीप हैं कि इनमें से किसी एक को किसी भी बड़े बदलाव या परिवर्तन का मुकुट नहीं पहनाया जा सकता। हां, किसी मामले में किसी एक-दो माध्यम को पहल करते तो देखा गया है पर उसी के सहारे सबकुछ पलट गया हो, ऐसा कोई उदाहरण अभी बीते एक दशक का तो नहीं याद आता है।

समाचारपत्र-पत्रिकाओं के अलावा लगभग तीस साल तक यानी सत्तर तक रेडियो की पहुँच और व्याप्ति किसी भी एक समाचारपत्र-पत्रिका से अधिक रही है। मनोरंजन, संगीत और कृषि के विकास में उसका योगदान काफी रहा है। रेडियो के समाचारों की विश्वसनीयता, उसके सरकारी होने के बावजूद, असंदिग्ध रही है। टीवी के आते ही रेडियो लगातार नेपथ्य में जाता रहा है। घरों से रेडियो सेट गायब हैं। उनकी जगह टीवी ने ले ली है। पिछले एक दशक से एफ एम के रास्ते रेडियो वापस आ रहा है पर यह वह पुराना रेडियो नहीं है। टी वी का विस्तार तो अभी तीस बरस का ही है पर उसने अपनी पहुंच नगर और गांव के घरों तक तेजी से बढ़ाई है। पर सूचनात्मक सनसनी और दृश्य-श्रव्य मनोरंजन को छोड़कर विचार के संदर्भ में उसका योगदान अभी भी कम ही माना जाता है। हाँ, सोशल मीडिया ने अपनी उपस्थिति और उपयोगिता से सबको पीछे छोड़ा है। एक तो वह निर्बंध अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है। अपने मन, भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किसी सम्पादक से अनुमति या पैरवी कराने की जरूरत नहीं है। फिर वह आपसी संवाद का सीधा अवसर उपलब्ध कराता है। उस सबके लिए आपको कोई अतिरिक्त व्यय भी नहीं करना होता है। वह अभियान का हिस्सा भी बनता है और अभियान का आयोजन करने का जिम्मा भी लेता है। एक तरह से यह मीडिया का वर्तमान परिदृश्य है जिसमें सबकी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं।

सतही तौर पर ऐसा लगता है कि सभी माध्यमों में सोशल मीडिया व्यक्ति को बिना किसी व्यय के माध्यम के उपयोग का अधिकार और सामर्थ्य देता है। रेडियो, टी वी या समाचारपत्र-पत्रिका का संचालन अब केवल उपभोक्ताओं के सहारे करना कठिन है। वाशिंगटन पोस्ट हो या नई दुनिया, दोनों के बिकने का कारण उनकी आर्थिक स्थिति ही तो बताई गई है। एक से अधिक समाचार चैनल में अपनी आर्थिकी के कारण ही प्रारंभ होने के कुछ समय बाद ही या तो बंद हो गये या फिर बिक गये। ये तीनों माध्यम बाजार की सहायता से ही चल पाते हैं। विज्ञापन एक मायने में उनकी आधार आय बन गई है। तकनीक और स्पर्धा ने

उनका संचालन व्यय भी बढ़ा दिया है। ऐसे में इन तीनों माध्यमों का अर्थशास्त्र बाजार के मूल्यों और बाजार के आदर्शों को मानने के लिये बाध्य है। बाजार का मूल्य है कि अभाव के दौरान कीमतें बढ़ा देना अनैतिक नहीं है। मिलावट को अनैतिक मानें पर बाजार को उससे कोई गुरेज नहीं है। बाजार का आदर्श है कि कीमतों को लागत के आधार पर नहीं, बाजार के आधार पर कम ज्यादा करो। ऐसे ही बहुत से मूल्य और आदर्श हैं जिन्हें हम जानते हैं या हमने बाजार में उन्हें अनुभव किया है। सोशल मीडिया भी एक बाजार ही है। वह लोगों को अपने स्वायत्त उपयोग का भ्रम पैदा करके और आजादी देकर उन्हें उपभोक्ता की तरह ही बाजार में उतारता है पर वे उपभोक्ता अपने को अपने कंटेंट का स्वामी मानकर अपना व्यवहार करते हैं। वह मंच ही देता है और मंच पर लोगों के जमघट के बहाने वह बाजार खोल देता है। उसने नैतिक मूल्यों और अराजक तथा अनियमित गतिविधियों के संबंध में भी तब ध्यान दिया जब लोगों ने उस पर दबाव डाला। सरकार और संगठनों के सख्त रुख से उसने लोगों के स्वच्छंदतावाद को थोड़ा सा नियंत्रित किया है। वह जानता है कि अधिक नियंत्रण लोगों के जमघट को प्रभावित करेगा और उससे उसका बाजार प्रभावित होगा। इस मायने में सोशल मीडिया अधिक अनर्थकारी है क्योंकि वह अपने आर्थिक स्वार्थ के लिए सामाजिक बुराइयों, अनियमित और निरर्थक व्यवहारों को प्रकारांतर से प्रोत्साहित ही करता है। उसका कोई नियामक नहीं है। उसका कोई नियामक होना चाहिये। जो लोग उसका उपयोग करते हैं, उनको भी इस बारे में जरूर सोचना चाहिये और कम से कम उसे हाइड पार्क का तो अनुकरण करना ही चाहिये जहां लोग अपनी बातें मुखौटा लगाकर नहीं कहते हैं।

इस सब का आशय यह भी है कि सूचना-विचार केन्द्रित समाज के लिए ऐसे माध्यम की आज भी जरूरत है जो खुली खिड़की रखकर सूचनाओं-जानकारियों तथा विचारों के मुक्त प्रवाह का अबाध मार्ग तो दे पर यह ध्यान रखे कि यह प्रवाह प्रतिगामी या कुमार्गी न हो। ऐसा न हो जिससे विकार और नफरत को बढ़ावा मिले या समाज का बिखराव हो। समाचारपत्र- पत्रिका से यह उम्मीद अभी भी है कि वह ऐसा समाज रचने में मदद करे। इसके लिए उसे एक बार फिर से अपनी ऐतिहासिक भूमिका का स्मरण करना होगा। उसे अपने कंटेंट के विकास और पत्र के संचालन के बारे में कुछ ऐसी कार्यकारी नीतियाँ तय करनी होंगी जिससे उसकी आर्थिक स्थिति भी ठीक रहे। बाजार उसका सहयोग तो उसके उपभोक्ताओं के आधार पर ले सके पर उसे बाजार की शर्तों पर अपने मूल्य और आदर्शों को बदलना नहीं पड़े।

- कमल दीक्षित

****